भारतेंदु हरिश्चंद्र : एक परिचय

FIROZBERG MIRZA

'भारतेंदु हरिश्चंद्र' का नाम हिन्दी साहित्य में बड़े आदर के साथ लिया जाता है । आधुनिक गद्य साहित्य की तमाम विधा भारतेंदुजी से पल्लवीत, पुष्पीत होती है । हिन्दी गद्य साहित्य की कमी को उन्होंने ब-खूबी से पुरा किया जहाँ केवल ब्रज - अवधी में राजा - महाराजाओं की स्तूति हुआ करती थी वहां खड़ी बोली को हिन्दी को ऊंगली पकड़ कर आगे चलते भारतेंदु जी ने ही किया; अत: उन्हें आधुनिक हिन्दी गद्य का पितामह भी कहा जाता है । 'आ.रामचंद्र शुक्ल' ने उनका जन्म काशी में भाद्र शुक्ल पू संवत १९०७ को माना है ।

हिन्दी साहित्य मे काव्य लेखन प्रचलित था । गद्य लेखन ना के बराबर था । खड़ीबोली हिन्दी की अपेक्षा ब्रज और अवधी में काव्य लेखन की तुलसी, सूर वाली परंपरा कवियोंने बनाये रखी थी । ऐसे समय में हिन्दी साहित्य में गद्य - लेखन के प्रति किसी में रूचि न थी । भारतेंदुजी बचपन में एक बार अपने परिवार के साथ बंगाल गये थे और वहां बंगला साहित्य में गद्य विधा का विपुल मात्रा में रचा साहित्य देखकर उनके मन में भी खड़ीबोली हिन्दी में इस कमी को पुरा करने की तीव्र इच्छा पैदा हुयी । संवत् १९२५ में महज १८ वर्ष की आयु मे उन्होंने 'विद्यासुंदर नाटक' बंगला भाषा से हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित किया । आगे उन्होंने 'कविवचनसुधा' नाम से एक पत्रिका निकाली जिसमें ब्रज-अवधी भाषा में पुराने कवियों की कवितायें छपती थी और पत्रिका के अंत में गद्य लेख के रिक्त-स्थान अवश्य रहता था । ये पत्रिका भी उसी वर्ष शुरू की गई थी जब 'विद्यासुन्दर नाटक' का अनुवाद किया गया था ।

आगे उन्होंने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नाम से एक मासिक पत्रिका निकाली । इसी पत्रिका से भारतेंदु जी ने नई सुधरी हुयी हिन्दी का प्रारंभ माना है । 'कालचक्र' नामक अपनी पुस्तक में लिखते हैं - ''हिन्दी नई चाल में ढली'' भारतेन्दु जी के खड़ीबोली हिन्दी के प्रति आकर्षण और हिन्दी के नये कलेवर को देखकर कई साहित्यकार भारतेंदु जी के साथ जुड गये । इनमें पं.प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह, पं.बालकृष्ण भट्ट आदि प्रमुख थे । हिन्दी साहित्य में इन साहित्यकारों को 'भारतेंदु मण्डली' के नाम से पहचाना जाता है । सन् १८७४ में उन्होंने स्त्री - शिक्षा हेतु 'बालाबोधिनी' पत्रिका निकाली । १८७३ में वो 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति ' नामक एक मौलिक नाटक लिख चुके थे । इस नाटक में उन्होंने अंधश्रद्धा का पर्दाफाश करने की काशिश की थी । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वो हिन्दी के प्रथम नाटककार थे इससे पहले केवल दो नाटक लिखे गये थे एक उनके पिता बाबू गोपालचंद्र द्वारा 'नहुष' और दूसरा 'विश्वनाथसिंह' द्वारा 'आनंद रघुनंदन' ये दोनों नाटक ब्रज भाषा में लिखे गये थे । अत: खड़ीबोली हिन्दी में प्रथम नाटक लिखने का बहुमान भारतेंदु जी को ही जाता है । एक ओर ''वैदिकी हिंसा हिंसा न वभति, चंद्रबली, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी, प्रेम-जोगिनी, सती प्रताप जैसे मौलिक नाटकों की रचना की तो दूसरी और विद्यासुन्दरी, पाखंड, विडंबन, धनंजय-विजय, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्यहरिश्चंद्र, भारत जननी '' जैसे अनुदित नाटकों की रचना की ।

भारतेंदु जी ने साहित्य में सर्वाधिक नाटकों ही लिखे । उनके नाटको की लोकप्रियता व रंगमंचियता की सफलता का मानदंड भाषा की सरलता को माना जा सकता है । उनकी नाट्य-शैली में भारतीय नाट्य-शैली की उबा देने वाली जटिलता नहीं थी और नहीं अंग्रेजी नाटकों की नकल थी । भारतीय व पश्चात्य नाट्य-शैली का मिलाजुला रूप उनके नाटकों में देखा जा सकता है । गद्य साहित्य की लग-भग सभी विधाओं मे उन्होंने अपना हाथ आजमाया और हिन्दी साहित्य को नई दिशा देने का प्रयत्न किया । भारतेंदु जी ने गद्य विधा का शिलान्यास तो किया ही साथ ही एक ऐसी भाषा को हिन्दी साहित्य में स्थान दिया जो साहित्य में बहुत कम प्रचलित थी । खड़ीबोली हिन्दी को सरल रूप से उन्होंने ही प्रस्तुत किया जहां सदा सुखलाल, लल्लूलाल और सदन मिश्र जी की भाषा दुरूह थी जिसे सामान्य पाठक मुश्किली से समझ सकता था वही राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की भाषा में उर्दू शब्दों की भरमार तो इसके विपरित राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा में तत्सम् शब्दों के कारण जन-भाषा कम और संस्कृत भाषा का बोध अधिक होता था । ऐसी परिस्थिति में भारतेन्दु जी ने मध्यम मार्ग को अपनाते हुये ऐसी हिन्दी का चयन किया जिसमें सबकुछ मिला हुआ हो । फिर भी किसी एक रूढ़िवादिता से बची हो । जिसमें पांडित्य की अपेक्षा जन-सामान्य तक अपने विचारों को प्रसारित करने पर अधिक बल दिया गया हो ।

भारतेन्दु के समग्र साहित्य में कहीं न कहीं हमें भारत स्वतंत्रता के स्वर सुनायी पड़ते हैं । १८५७ के विप्लव के पश्चात् भारतीय जन-मानस में स्वतंत्रता की एक चाह उत्पन्न हुयी थी । भले ही वो विप्लव असफल रहा हो । किंतु उसके द्वारा भारतीय जनता को आज़ादी की एक हलकी सी खुश्बू का अहसास हो गया था । जब ये विप्लव हुआ तब भारतेन्दु जी की आयु ७ साल रही होगी और किशोर अवस्था तक पहुँचते वो अंग्रेजी राज का चित्रण अपने मस्तिष्क में बना चुके होंगे । अत: उनके लिखे साहित्य में अंग्रेजी शासन के प्रति निराशा को हम 'अंधेर नगरी' नाटक में भी देख सकते हैं । जो साहित्यकार केवल अपने आश्रितों की प्रशंसा किया करते थे वो अब अंग्रेजी नीति का विरोध भी करने लगे थे । इस संबंध में भारतेन्दु जी ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुये लिखा है :

''अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन निदेश चलि जात यहै अति ख्वारी ।।''

जिस समय अंग्रेजी राज का इतना जबरदस्त आधिपत्य हो कि उसके विरुध्ध आवाज़ उठाना आफत को गले लगाने के बराबर समझा जाता था उस समय भारतेन्दु जी ने अंग्रेजी राज की वास्तविकता को जनता के समक्ष प्रस्तुत की वो अपने आपमें बहुत-बड़ा साहस माना जा सकता है । अंग्रेजों की शोषणवादी नीति के विरुध्ध भारतेन्दु जी की ये काव्यपंक्तिर्या आज भी मुक्तकंठ से गायी जाती है, जैसे-

''भीतर - भीतर सब रस चूसै, हंसि - हंसि के तन - मन धन मूसै ।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहिं अंग्रेज ।।''

एक कवि के नाते भारतेन्दु जी ने समाज के प्रति अपने दायित्व को बराबर निभाया । सामाजिक दुषणों के विरुध्ध सर्व प्रथम आवाज़ उन्होंने ही उठायी । एक समय भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था किंतु धार्मिक पाखंड, स्वार्थपरता, सामाजिक कुरीतियों ने हमारे देश को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया । सती प्रथा, छुआ छुत, बाल

विवाह जैसी बुराईयों से भारतेन्दु जी दु:खी थे और ये मलाल उनकी कलम से कविता, नाटक के रूप में टपकता दिखायी देता है। भारतेन्दु जी की पीड़ा को हम इन पंक्तियों से समझ सकते हैं -

''रोबहु सब मिलि आवहु भारत भाई ।
हा - हा भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।''

भारतेन्दु जी के सामाजिक समस्याओं और भारत की वास्तवदर्शी कविताओं को देखकर अन्य साहित्यकार भी उन्हीं की तरह लिखने लगे। इस दिशा में किसी ने सोचा नहीं था पहले पहल भारतेन्दु ही थे जिन्होंने कविताओं को इस प्रकार के विषय दिये। उनके लेखन से प्रभावित होकर प्रतापनारायण मिश्र विधवाओं के दु:ख को प्रकट करते हुये लिखते हैं ''कौन करैजो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवन की।'' तो 'राधाचरण गोस्वामी' भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुये लिखते हैं - ''

''मैं हाय - हाय दै धाय पुकारों रोई ।
भारत की डुबी नाव उबारौ कोई ।।''

भारत की दुर्दशा से तत्कालिन समाज अच्छी तरह परिचित और दु:खी था किंतु कोई साहित्यकार ऐसे विषायों को लेकर लिखने के लिये तैयार नहीं था। भारतेन्दु जी ने इस संबंध में लिखना शुरू किया और फिर तो साहित्यकारो में एक नया जोश आ गया और हर किसी में इस प्रकार की रचना करने के लिये होड मची रहती थी। इस नई चेतना को जगाने का श्रेय श्री भारतेन्दु जी को ही है। हिन्दी भाषा को लेकर उनका स्पष्ट ख्ख था कि निज भाषा से ही हमारी उन्नती हो सकती है। आज की तरह उस समय में भी अंग्रेजी भाषा का बोलबाला था। नवयुवक विदेशी भाषा के मोह पाश में बंधे हुये थे ऐसे समय राष्ट्र भाषा हिन्दी के संदर्भ में उनकी ये पंक्तियां विशेष महत्व रखती है :

''निजभाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के,
मिटे न हिय को सूल ।''

बाबू हरिश्चंद्र जी उदार प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके पास धन की कमी नहीं थी, वो चाहते तो धन - संपत्ति से वैभवी जिंदगी जी सकते थे किंतु उन्होंने धन रूपयों को साहित्य की सेवा में लगाया। कई साथी साहित्यकारों की धन की कमी को पुरा किया। कई संस्थाओं को धन राशी दी इस कारण विद्वानजनों ने उनको 'हरिश्चंद्र' की उपाधि दी थी। कुलमिलाकर हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु जी ने गद्य साहित्य का हर एक कोना झाँका और उसकी कमी को पूर्ण किया। ३५ वर्ष की अल्पायु में उन्होंने विपुल मात्रा में साहित्य सृजन किया। उनकी साहित्य के प्रति रूचि का सबसे प्रबल प्रमाण तो यही है कि इतनी कम आयु में उन्होंने ७२ ग्रंथों की रचना कर दी जो स्वयं एक कीर्तिमान बनता है। अपने इस कार्य से उन्होंने हिन्दी साहित्य को ऋणि किया है। जब भी हिन्दी साहित्य को लेकर चर्चा, विचार, विमर्श किया जायेगा। बिना बाबू भारतेन्दु हरिश्चंद्र की चर्चा किये वो अधूरी ही रहेगी।